

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 14: राजा वेन

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पीड़ित प्रजा के कल्याण के लिए, महर्षि अभिमानी राजा वेन के समक्ष उसके सिंहासन के आगे खड़े होते हैं, उससे धर्मपूर्वक शासन करने तथा समस्त यज्ञ के स्वामी भगवान् का सम्मान करने की याचना करते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

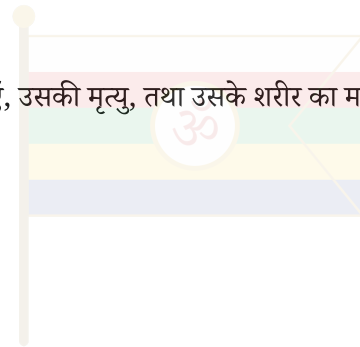
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, साधु राजा अंग, अपने पुत्र की क्रूरता से थककर, अपना सिंहासन त्यागकर रात्रि में वन में चले गए, दुष्ट वेन को एकमात्र उत्तराधिकारी छोड़ते हुए। यह चतुर्दश अध्याय वेन के शासन की कठोर कथा कहता है। नेतृहीन प्रजा को अराजकता से बचाने के लिए, ऋषि वेन

को राजा बनाते हैं; किन्तु वह अभिमान से भर उठता है, समस्त यज्ञ निषिद्ध कर देता है, और घोषणा करता है कि केवल उसी की पूजा हो। ऋषि उसे बार-बार, धैर्य से और व्यर्थ, समझाते हैं, जब तक कि, संसार के कल्याण के लिए, वे उसके शासन का अन्त नहीं कर देते। फिर, उसके स्थान पर एक योग्य शासक खोजते हुए, वे उसके निर्जीव शरीर का मन्थन करते हैं, और उससे दो प्राणी उठते हैं — एक श्याम, जो वेन का पाप हर लेता है, और, जैसे अध्याय अपने अनुक्रम की ओर मुड़ता है, एक तेजोमय राजा के आने का वचन। यह अभिमान द्वारा एक आत्मा में की जाने वाली बर्बादी का, और उस करुणा का अध्याय है जो विनाश से भी भला खींच लाती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 14 (चतुर्दश अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: राजा वेन की कथा
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में (जिसमें ऋषियों तथा वेन के वचन उद्धृत हैं)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: अंग के प्रस्थान के बाद नेतृहीन छोड़ा गया राज्य
- केन्द्रीय विषय: राजा वेन का कुशासन तथा अभिमान, ऋषियों की याचनाएँ, उसकी मृत्यु, तथा उसके शरीर का मन्थन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 1-46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 13 ने बताया कि कैसे साधु राजा अंग, अपने दुष्ट पुत्र वेन को सुधारने में असमर्थ, अपने शोक में एक कठोर स्वतन्त्रता पाकर अपना राज्य त्यागकर रात्रि में चुपचाप चले गए; और कैसे उनकी प्रजा ने उन्हें पृथ्वी पर व्यर्थ खोजा। यह चतुर्दश अध्याय उस नेतृहीन भूमि में आरम्भ होता है, जहाँ ऋषियों को यह निर्णय करना है कि अब प्रत्येक ओर से अराजकता के सम्मुख एक प्रजा की रक्षा कैसे की जाए।

अराजक भूमि

भृगु तथा अन्य महर्षि, सदैव संसार के हित का ध्यान रखते हुए, अंग के चले जाने के बाद उस भूमि की ओर देखकर व्यथित हुए: प्रजा को रोकने वाला कोई न था, और वह पहले ही एक-दूसरे पर पशुओं की भाँति टूट पड़ी थी।

मैत्रेय उवाच

भृगवादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ।

गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥

maitreya uvāca bhṛgv-ādayas te munayo lokānāṁ kṣema-darśinaḥ goptary asati vai nṛṇāṁ paśyantaḥ paśu-sāmyatām

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: भृगु तथा अन्य महर्षि, लोकों के कल्याण के प्रति सदा सजग, ने देखा कि रक्षक के अभाव में प्रजा पशुओं के स्तर तक गिर रही है। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 1)



नेतृहीन प्रजा को अराजकता में गिरता देख, महर्षि चिन्तित परामर्श में एकत्र होते हैं, यह जानते हुए कि प्रजा प्रत्येक ओर से संकट में है, जैसे दोनों छोर से जलते काष्ठ में चींटियाँ (श्लोक 1-8)।

परस्पर परामर्श करते हुए, ऋषियों ने देखा कि प्रजा एक साथ दोनों दिशाओं से संकट में फँसी है — बिना राजा के फलते-फूलते चोर-लुटेरों और कुशासन के विनाश के बीच — जैसे दोनों छोर से जलते काष्ठ में चींटियाँ फँस जाती हैं।

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ।

दारुण्युभयतो दीप्ते इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥

aho ubhayataḥ prāptaṁ lokasya vyasanam mahat dāruṇy ubhayato dīpte iva taskara-pālayoḥ

अर्थ: (ऋषियों ने कहा:) हाय, प्रजा दोनों ओर से महान् संकट में फँसी है — दोनों छोर से जलते काष्ठ की चींटियों की भाँति — एक ओर चोर तथा दूसरी ओर उचित शासक के अभाव के बीच। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 8)

संकट का सामना करने के लिए, ऋषियों ने एक राजा स्थापित करने का निश्चय किया, और, उसकी माता की सम्मति से, उन्होंने वेन को अभिषिक्त किया — क्योंकि अपने दोषों के बावजूद उसमें दुष्टों को रोकने का बल था। और सचमुच, आरम्भ में, वेन के बल के मात्र भय से चोर-लुटेरे बिखर गए, और भूमि शान्त हो गई।

वेन का आभेमान

किन्तु एक अभिमानी हृदय में शक्ति ने शीघ्र अपना सच्चा रूप दिखाया। वेन, अपने ही बल से उन्मत्त, महान् जनों को भी तुच्छ समझने लगा, और अपने रथ पर आरुढ़ होकर गरजते मेघ की भाँति भूमि पर गूँजने लगा। उसने अपने समस्त राज्य में यज्ञ, दान, तथा धार्मिक आचरण निषिद्ध कर दिया, और घोषणा की कि उसके, राजा के, अतिरिक्त किसी देवता की पूजा न हो। ऋषि, प्रजा तथा धर्म की हानि के लिए दुखी, कोमलता से उसके पास आए और उसके विवेक से याचना की — उसे स्मरण कराते हुए कि राजा का अपना कल्याण, तथा उसकी प्रजा का, परम भगवान् के सम्मान पर टिका है, समस्त के स्रोत, जिनसे प्रत्येक आशीर्वाद प्रवाहित होता है।

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ।

लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २० ॥

tasmims tuṣṭe kim aprāpyam jagatām īśvareśvare lokāḥ sapālā hy etasmai haranti balim ādṛtāḥ

अर्थ: (ऋषियों ने वेन को समझाया:) जब वे समस्त स्वामियों के स्वामी परम भगवान् प्रसन्न होते हैं, तब क्या अप्राप्य रह जाता है? समस्त लोकों के शासक भी सादर उन्हें अपनी भेंट अर्पित करते हैं। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 20)

किन्तु वेन ने न सुना। ऋषियों को अनुभवहीन बालक कहकर उपहास करते हुए, उसने उन्हीं का दृष्टान्त उन पर पलट दिया: क्या वे उस असती स्त्री के समान नहीं जो अपने पालनकर्ता पति को त्यागकर किसी उपपति के पीछे भागती है — मानो वह, राजा, न कि वे जिस भगवान् की सेवा करते थे, उनका सच्चा पति हो? वह इससे भी आगे बढ़ा और घोषित किया कि वर तथा शाप देने में समर्थ प्रत्येक देवता का बल राजा के ही शरीर में निवास करता है, अतः राजा स्वयं समस्त देवताओं का सार है।

विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ।

पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपाम्पतिः ॥ २६ ॥

एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ।

देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २७ ॥

viṣṇur viriṅco giriśa indro vāyur yamo raviḥ parjanya dhanadaḥ somaḥ kṣitir agnir apāmpatiḥ

ete cānye ca vibudhāḥ prabhavo vara-śāpayoḥ dehe bhavanti nṛpateḥ sarva-devamayo nṛpaḥ

अर्थ: (वेन ने घोषित किया:) विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, तथा वर या शाप देने में समर्थ प्रत्येक अन्य देवता — ये सब राजा के शरीर में निवास करते हैं; अतः राजा स्वयं समस्त देवताओं का सार है। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 26–27)

इस दावे में सत्य का एक अंश मुड़ा हुआ छिपा है, जिस पर रुकना उचित है। जो राजा धर्मपूर्वक शासन करता है, उसमें देवताओं की शक्ति का एक अंश वास्तव में विद्यमान रहता है, प्रजा की रक्षा के लिए उन्हीं की ओर से सौंपा गया — वह उस शक्ति का न्यासी है, स्रोत नहीं। वेन का पतन यही था कि उसने न्यास को स्वामित्व समझ लिया: क्योंकि दिव्य शक्ति का एक अंश उसमें से होकर बहा, उसने मान लिया कि वह स्वयं उसका मूल तथा समकक्ष है, और इसलिए उसी पूजा के योग्य जो केवल उस भगवान् को प्राप्त है जो देवताओं तथा राजाओं दोनों को यह शक्ति

उधार देते हैं। यही वह भूल है जिस पर सम्पूर्ण अध्याय टिका है — केवल कुशासन नहीं, बल्कि सेवक तथा स्वामी के, प्रणाली तथा स्रोत के, चिर-पुरातन भ्रम का। चाहे उसका पद कितना ही ऊँचा क्यों न हो, भक्त सदा कृपा का प्राप्तकर्ता ही रहता है, उसका स्रोत कभी नहीं; जिस क्षण वह इसे भूलकर, वेन के समान, महिमा स्वयं के लिए ले लेता है, उसका पतन आरम्भ हो चुका होता है।

बार-बार ऋषियों ने उसे समझाया; बार-बार उसने इनकार किया, प्रत्येक वचन के साथ उसका अभिमान कठोर होता गया।

एक शासन का अन्त

जब प्रत्येक याचना विफल हुई और वेन की निन्दा असह्य हो गई, ऋषि जो पहले केवल उसे बचाने का प्रयत्न कर चुके थे, अब और सहन न कर सके। “इसे मार डालो! इसे मार डालो!” वे पुकार उठे, क्योंकि ऐसा भयंकर मनुष्य, सिंहासन पर बना रहकर, शीघ्र ही सम्पूर्ण संसार को भस्म कर देगा — और उसकी क्रूरता से भी बढ़कर था भगवान् के विरुद्ध उसका अपराध, क्योंकि उस विष्णु की निन्दा कौन करेगा, जिनकी कृपा से ही प्रत्येक सौभाग्य प्राप्त होता है, यदि केवल अत्यन्त अभागा मनुष्य ही नहीं? अतः सबके कल्याण के लिए, तथा गम्भीर और अनिच्छुक हृदयों से, ऋषियों ने वेन के शासन का अन्त कर दिया — किसी शस्त्र से नहीं, बल्कि केवल अपने पवित्र वचन की शक्ति से। इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् की भाँति पूजा जाना चाहता था, उसी अभिमान से नष्ट हुआ जिसने उसे ऊपर उठाया था।

जब ऋषि अपने आश्रमों को लौट गए, सुनीथा, अपने पुत्र की मृत्यु के शोक से अभिभूत होकर, उसके निर्जीव शरीर को मन्त्र तथा विद्या-योग से सुरक्षित रखने लगी।

ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ।
सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३५ ॥

ṛṣibhiḥ svāśrama-padaṁ gate putra-kalevaram sunīthā pālayām āsa vidyā-yogena śocatī

अर्थ: जब ऋषि अपने आश्रमों को लौट गए, सुनीथा, शोकाकुल, अपने मृत पुत्र के शरीर को मन्त्र तथा विद्या-योग से सुरक्षित रखने लगी।
(स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 35)



ऋषियों के जाने के बाद, वेन की माता सुनीथा, अपने पुत्र की मृत्यु के शोक से अभिभूत, उसके निर्जीव शरीर को मन्त्र तथा विद्या-योग से सुरक्षित रखती है (श्लोक 35)।

वेन के शरीर का मन्थन

किन्तु शीघ्र ही भूमि पुनः नेतृहीन हो गई, और चोर-लुटेरे फिर उठकर प्रजा को सताने लगे। यह देखकर, ऋषि लौट आए, उसी विफल वंश से एक योग्य शासक खींचने के संकल्प के साथ। सुनीथा की अनुमति से, तथा एक विशेष पवित्र विधि से, उन्होंने वेन के निर्जीव शरीर की जंघाओं का मन्थन किया — और उस मन्थन से एक छोटा, श्याम, बौना पुरुष उठ खड़ा हुआ।

विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ।

ममन्थुरूं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४३ ॥

vinīścītyaivam ṛṣayo vipannasya mahīpateḥ mamanthur ūruṁ tarasā tatrāsīd bāhuko naraḥ

अर्थ: ऐसा निश्चय करके, ऋषियों ने बल से मृत राजा की जंघाओं का मन्थन किया; और उनसे एक बौना पुरुष उठ खड़ा हुआ। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 43)



एक योग्य उत्तराधिकारी खोजते हुए, ऋषि मृत राजा के शरीर का एक पवित्र विधि से मन्थन करते हैं, और उससे एक छोटा, श्याम पुरुष उठता है जो वेन का घोर पाप हर ले जाता है (श्लोक 43-46)।

यह श्याम, छोटे अंगों वाला प्राणी, अपने भयंकर रूप के बावजूद, अत्यन्त विनम्र था: जन्म लेते ही उसने झुककर प्रणाम किया और ऋषियों से पूछा कि वह क्या करे। “बैठ जाओ” (निषीद), उन्होंने कहा — और उसी एक शब्द से उसका नाम निषाद पड़ा। जन्म के उसी क्षण उसने वेन के समस्त संचित पाप को अपने ऊपर ले लिया, और इस प्रकार राजा का शरीर अपने दोष से शुद्ध हो गया। उससे नैषाद वंशज उत्पन्न होते हैं, जो पर्वतों तथा वनों में निवास करते हैं।

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ।

येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

tasya vaṁśyās tu naiṣādā giri-kānana-gocarāḥ yenāharaj jāyamāno vena-kalmaṣam ulbaṇam

अर्थ: उसके वंशज, नैषाद, पर्वतों तथा वनों में निवास करते हैं; क्योंकि अपने जन्म के क्षण में ही इस प्राणी ने वेन का घोर पाप अपने ऊपर ले लिया। (स्कन्ध 4, अध्याय 14, श्लोक 46)



वेन का पाप हर लिए जाने पर, ऋषि अब शुद्ध शरीर की भुजाओं का मन्थन करते हैं, और एक तेजोमय, योग्य आकृति उठने लगती है — आने वाले राजा पृथु, जिनके अवतरण की कथा अगला अध्याय कहेगा (श्लोक 46 से अध्याय 15 तक)।

इस प्रकार उसका पाप हर लिए जाने पर, वेन का शरीर शुद्ध हो गया; और ऋषियों ने, यह देखकर, राजा की भुजाओं का मन्थन करने की तैयारी की, जिनसे एक तेजोमय तथा योग्य शासक उठेगा। इस प्रकार चतुर्दश अध्याय उस महान् अवतरण की देहरी पर समाप्त होता है — राजा पृथु का आगमन, जिसे अगला अध्याय खोलता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. धर्ममय रक्षा के बिना समाज हिंसक हो जाता है। ऋषियों का प्रथम भय यही है कि नेतृहीन प्रजा “पशुओं के स्तर” तक गिर जाएगी। धर्म में स्थापित व्यवस्था पिंजरा नहीं बल्कि एक आश्रय है जो हमें मानव रखता है (श्लोक 1)।
2. अभिमान शक्तिशाली की बर्बादी है। वेन में वास्तविक बल था, दुष्टों को बिखेरने के लिए पर्याप्त; किन्तु अभिमान ने उस बल को उन्हीं भगवान् के विरुद्ध मोड़ दिया जिन्होंने उसे दिया था। उसने रक्षा के लिए उधार दी गई दिव्य शक्ति के एक अंश को यह प्रमाण मान लिया कि वह स्वयं समस्त देवताओं का स्रोत है, और इस प्रकार वही पूजा माँगी जो केवल भगवान् को प्राप्त है। जो हमें ऊपर उठाता है, वही, विनम्रता से अशासित रहने पर, हमें नीचे गिरा सकता है — जो न्यासी अपने न्यासी होने को भूल जाए, उसका पतन पहले ही आरम्भ हो चुका होता है (श्लोक 15-30)।
3. भगवान् की पूजा निषिद्ध करना प्रत्येक भले के स्रोत को काटना है। वेन ने यज्ञ निषिद्ध किया और स्वयं को भगवान् के स्थान पर रखा। ऋषि चेतावनी देते हैं कि जब परम प्रसन्न होते हैं तब कुछ अप्राप्य नहीं रहता — और, अन्तर्निहित रूप से, कि उन्हें अस्वीकार करना मूल में ही सब कुछ खो देना है (श्लोक 20)।
4. बुद्धिमान् दृढ़ता से पूर्व धैर्य से सुधारते हैं। ऋषि, प्रत्येक कोमल उपाय समाप्त करते हुए, वेन से बार-बार याचना करते हैं, इससे पहले कि अन्ततः, शोकाकुल हृदयों से, यह घोषित करें कि जो मनुष्य स्वयं विष्णु की निन्दा करे उसे अब शासन नहीं करने दिया जा सकता — और बिना एक भी शस्त्र उठाए, केवल पवित्र ध्वनि के बल से उसके शासन का अन्त कर दें। सच्चा अधिकार कठोरता की ओर मुड़ने से पहले करुणा को

चुका देता है (श्लोक 16-32)।

5. भगवान् विनाश से भी भला खींच लाते हैं। वेन के अपने शरीर के विनाश से ही उसके पाप का हरण — उस विनम्र प्राणी निषाद द्वारा, जिसका नाम स्वयं ऋषियों के शब्द “बैठ जाओ” को सुरक्षित रखता है — तथा, शीघ्र ही, एक धर्ममय राजा आते हैं। कोई पतन इतना पूर्ण नहीं कि कृपा उससे कुछ उद्धार न ला सके (श्लोक 43-46)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

वेन की कथा असहज करने वाली है, और इसका यही अभिप्राय है। यहाँ एक ऐसा मनुष्य है जिसे वास्तविक शक्ति तथा वास्तविक अवसर दिए गए, एक यज्ञ से जन्मा और सन्तों द्वारा अभिषिक्त — और वह इस सबको एक ही, बढ़ते दोष से गँवा देता है: अभिमान। उसकी कथा को इतना सचेत करने वाला यह बनाता है कि वेन मात्र एक राक्षस नहीं है; वह एक चेतावनी-दर्पण है। उसका दोष यह था कि जो बल उसे दिया गया था उसे लेकर उसने कल्पना की कि वह उसका अपना है, कि उसके दाता के स्थान पर उसी की पूजा हो। यह प्रलोभन केवल राजाओं तक सीमित नहीं है। जब भी हम अपने जीवन के उपहारों को — अपनी प्रतिभा, अपना पद, यहाँ तक कि अपनी भक्ति को — लेकर चुपचाप उनकी, या उनके द्वारा अपनी, पूजा करने लगते हैं, उन भगवान् के बजाय जिन्होंने उन्हें दिया, तो हम वेन के मार्ग पर थोड़ा चल पड़ते हैं। फिर भी अध्याय अखण्ड अन्धकार में समाप्त नहीं होता। इतने बर्बाद जीवन के मलबे से भी, ऋषि पहले एक शुद्धि और फिर एक धर्ममय राजा का वचन खींच लाते हैं। भगवान् की करुणा ऐसी है कि कोई विनाश पूर्णतः बिना द्वार के नहीं। अध्याय हमारे लिए एक खोजपूर्ण प्रश्न छोड़ता है: क्या हम अपने दिए गए उपहारों को ध्रुव की विनम्रता से धारण करेंगे, जो केवल भगवान् को स्मरण रखना चाहता था — या वेन के अभिमान से, जो उनके स्थान पर पूजा जाना चाहता था?

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, उस द्वार की रक्षा करें जहाँ से अभिमान प्रवेश करता है। अपने जीवन का एक उपहार चुनें जिसका श्रेय लेने का आपको प्रलोभन होता है — कोई कौशल, कोई उपलब्धि, कोई बल जिसकी दूसरे सराहना करते हैं — और उसे सचेत रूप से उसके दाता को लौटा दें। उसे भगवान् के समक्ष धारण करें और, विनम्र हृदय से कहें, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय”, यह स्वीकार करते हुए कि जो भी भला आपके पास है वह उन्हीं से प्रवाहित होता है और उनकी सेवा के लिए है, आपकी अपनी महिमा के लिए नहीं। जहाँ वेन ने कहा “मेरी पूजा करो,” वहाँ आपका दिन चुपचाप कहे “मैं आपकी पूजा करता हूँ।” और यदि आप छोटी बातों में भी, भगवान् के स्थान पर प्रशंसित होने की इच्छा देखें, तो उसे कोमलता से रख दें। अपने उपहारों को उनके स्रोत को लौटाने में, आप विनम्र भक्त का मार्ग लेते हैं और वेन के मार्ग से, एक पग, मुड़ जाते हैं।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का चतुर्दश अध्याय उस राजा के पतन की गाथा कहता है जो उपहार तथा दाता में भेद न कर सका। ऋषियों द्वारा एक अराजक प्रजा की रक्षा हेतु अभिषिक्त, वेन अपने ही बल के नशे में डूब जाता है, समस्त यज्ञ रोक देता है, तथा भगवान् को प्राप्त होने वाली पूजा स्वयं के लिए माँगता है — उसे दी गई शक्ति को अपनी ही शक्ति समझने की भूल करते हुए। बार-बार सुधारा जाकर भी हर बार इनकार करते हुए, वह अन्ततः इतने खुलेआम विष्णु की निन्दा करता है कि ऋषि, शोकाकुल हृदयों से, केवल पवित्र ध्वनि के बल से उसका शासन शान्त कर देते हैं; उसकी शोकसन्तप्त माता तब उसके शरीर को सुरक्षित रखती है। एक योग्य उत्तराधिकारी खोजते हुए, ऋषि उसके निर्जीव रूप का मन्थन करते

हैं; उससे उठता है श्याम, विनम्र प्राणी निषाद, जो वेन का पाप हर ले जाता है, और फिर, जैसे शरीर शुद्ध होता है, एक तेजोमय राजा के आने का वचन। इस प्रकार अध्याय राजा पृथु के अवतरण की देहरी पर समाप्त होता है — यह दिखाते हुए कि अभिमान शक्तिशाली को भी बर्बाद करता है, फिर भी भगवान् की करुणा विनाश से भी भला खींच लाती है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

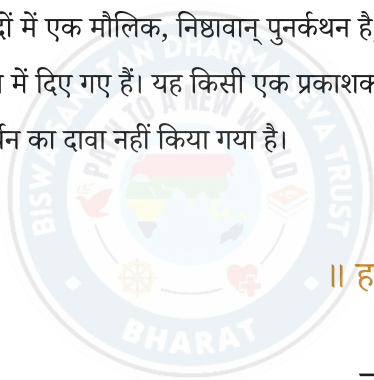
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, चतुर्दश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा किसी सम्बद्धता या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-14-the-story-of-king-vena-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट